

श्री अरविन्द कर्मधारा



भगवान के साथ एकता के लिए अर्पित जीवन ही जीने योग्य है।

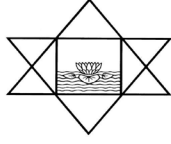
श्री माँ

वर्ष 46

अंक 7 (दिसम्बर)

2016





श्रीअरविन्द कर्मधारा

विषय-सूची

श्री अरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा का मुखपत्र

वर्ष: 46

2016

अंक : 7 दिसम्बर

संस्थापक
श्री सुरेन्द्र नाथ जौहर 'फ़क़ीर'

सम्पादिका
देवी करुणामयी

सहसम्पादन
अपर्णा रॉय,
त्रियुगी नारायण

कम्पोज़िंग
ई-मीडिया प्रिन्ट लाईन
संजय नगलिया, 9899942811

विशेष परामर्श समिति
डा. केदार नाथ वर्मा, इन्दु पिल्ले, कु. तारा जौहर,
डा. आलोक पाण्डेय, रंगम्मा, राकेश मिश्रा

विशेष सहयोग
गोविन्दा

कार्यालय
श्रीअरविन्द आश्रम- दिल्ली शाखा
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाष: 26524810, 26567863

1. सम्पादकीय	2
2. प्रार्थना और ध्यान	श्री माताजी 3
3. भागवत प्रेम हमेशा तुम्हें थामे रहता है	श्री माँ 4
4. छोटी बातें - बड़ा महत्व	श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 5
5. हमारे पर्वत: हमारा गौरव-1	रूपा गुप्ता 7
6. नववर्ष के आगमन की प्रार्थना	विमला गुप्ता 9
7. 5 व 9 दिसम्बर महासमाधि	श्री अरविन्द व माँ 10
8. श्री माँ के आलोक कण	श्री माँ 11
9. हमारे प्रश्न और माँ के उत्तर	12
10. जीवन का सच्चा लक्ष्य	श्री अरविन्द 16
11. उच्चतर जीवन	श्री सुखवीर आर्य 17
12. आश्रम की गतिविधियाँ	20

सम्पादकीय

एक साहस ऐसा भी है जिससे तुम नदियां लांघ सकते हो, एक ऐसा है जो मनुष्य को न्याय-पथ पर ले जाता है; पर सत्य मार्ग पर चलना शुरू करने की अपेक्षा उस पर दृढ़ रहने के लिए जिस साहस की आवश्यकता पड़ती है वह इनसे भी बड़ा है।

मुर्गी और उसके बच्चों का एक दृष्टान्त सुनो:

गौतम बुद्ध अपने शिष्यों से कहते थे कि तुम अपनी ओर से पूरा प्रयत्न करो और विश्वास रखो कि उन प्रयत्नों का फल तुम्हें मिलेगा ही।

वे कहा करते थे, "जिस प्रकार मुर्गी अण्डे देकर उन्हें सेती है और इस बात की जरा भी चिन्ता नहीं करती कि उसके बच्चे अपनी चोंचों से अण्डे फोड़ कर दिन के प्रकाश में आ जाने में समर्थ होंगे या नहीं, उसी प्रकार तुम्हें भी डरना नहीं चाहिये। सत्य मार्ग पर दृढ़ रहोगे तो तुम भी प्रकाश तक पहुंचोगे।

ठीक रास्ते पर चलना, विपत्तियों, आंधियों, अन्धकार और दुःख का सामना करना, डटे रहना, कुछ भी हो जाये, सदा आगे प्रकाश की ओर बढ़ने के प्रयत्न में लगे रहना ही सच्चा साहस है।

प्रगति के लिये तुम्हें पुरानी रचनाओं को ढाना, गिराना, पूर्वकल्पित विचारों को समाप्त करना होगा। पूर्वकल्पित विचार वे अभ्यासगत मानसिक रचनायें हैं- जिनमें आदमी रहता है, जो स्थिर होती है, जो कठोर दुर्ग बन जाती है और स्थिर होने के कारण प्रगति नहीं कर सकती। जो कुछ स्थिर हो, वह प्रगति नहीं कर सकता। इसलिये सभी पूर्वकल्पित विचारों को यानि सभी बंधी हुयी मानसिक रचनाओं को तोड़ डालो। यही सच्चा तरीका है नये भावों या नये विचारों को जन्म देने का ऐसे सक्रिय विचारों को जो सृजनात्मक हैं।

श्री माँ ने 'उक्त' के माध्यम से हमें नव-वर्ष में नये मानस को धारण करने और स्वयं में निरन्तर विकास करते रहने का जो संदेश दिया है, "सुधि" पाठकगण आशा है, इससे अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

शुभेच्छा के साथ!

ॐ आनन्दमयि वैतन्यमयि सत्यमयि परमे

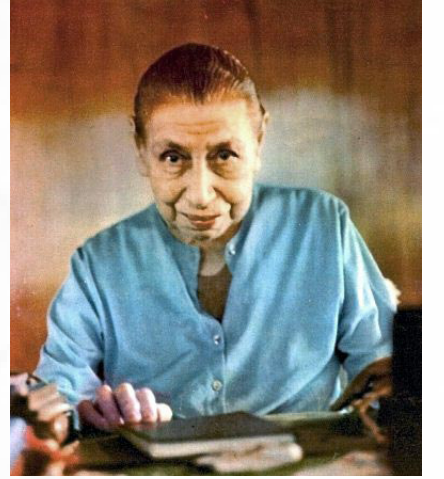
श्रीअरविन्द कर्मधारा

प्रार्थना और ध्यान

श्री माताजी

हे प्रभो! तू मेरा आश्रय और मेरा वरदान है, मेरा बल, मेरा स्वास्थ्य, मेरी आशा और मेरा साहस है। तू ही परम शांति, अमिश्रित आनंद, पूर्ण स्वच्छता है। मेरी पूरी सत्ता असीम कृतज्ञता और अनंत पूजा में तेरे आगे साष्टांग दंडवत् है और वह पूजा मेरे हृदय और मेरे मन से तेरी ओर उसी तरह उठती है जैसे भारत की सुगंधित धूप का शुद्ध धुआँ।

वर दे कि मैं मनुष्यों में तेरा अग्रदूत होऊं ताकि वे सब जो तैयार हैं उस आनंद का रस ले सकें जो तू मुझे अपनी अनंत करुणा में प्रदान करता है, वर दे कि तेरी शांति धरती पर राज्य करे।



भागवत प्रेम हमेशा तुम्हें थामे रहता है।

श्री माँ

सुनो मेरे नन्हे बालक! तुम जो स्वयं को इतना टूटा हुआ और पतित अनुभव करते हो, जिसके पास कुछ भी बाकी नहीं रहा अपनी दरिद्रता को ढँकने के लिये, अपने गर्व का पोषण करने के लिये कुछ भी नहीं रहा, ऐसे तुम इतने महान कभी नहीं थे। जो गहराई में जागता है, वह शिखर के कितने समीप होता है। कारण, खाई जितनी गहरी होती है, ऊँचाई उतनी ही अधिक प्रगट होती है।

यदि अग्नि-परिक्षाओं और त्रुटियों ने तुम्हें पछाड़ दिया है, यदि तुम दुःख के अथाह गर्त में डूब गये हो तो जरा भी शोक ना करो, क्योंकि वस्तुतः वहीं पर मिलेगा तुम्हें भगवान का स्नेह, उनका परम आशीष! क्योंकि तुम पावनकारी दुःखों की अग्नि में तप चुके हो, इसलिये अब तुम्हें गौरवमय शिखर मिलेंगे।

तुम बंजर बीहड़ में हो : तो सुनो नीरवता की वाणी। बाहर की स्तुति और प्रशंसा का कलरव ही तुम्हारे कानों को सुख देता है; अब नीरवता की वाणी तुम्हारी आत्मा को

सुख देगी, तुम्हारे अन्दर जाग्रत करेगी गहराइयों की प्रतिध्वनि, दिव्य स्वर संगतियों का नाद।

तुम गहन रात्रि में चल रहे हो: तो रात्रि की अमूल्य संपदा संग्रह करते चलो। सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश बुद्धि के मार्ग को आलोकित कर देता है, किन्तु रात्रि की श्वेत प्रभा में पूर्णता के गुप्त पथ दृष्टिगोचर होते हैं, आध्यात्मिक संपदाओं का रहस्य खुलता है।

तुम नग्नता और अभाव के मार्ग पर हो : यह प्रचुरता का मार्ग है। जब तुम्हारे पास कुछ ना बचेगा तो तुम्हें सब कुछ दिया जायेगा क्योंकि जो सच्चे और सीधे हैं उनके लिये बुरे से बुरे में से सदा भले से भला निकल आता है।

जमीन में बोया हुआ एक दाना हजारों दाने पैदा करता है। दुःख के पंखों का प्रत्येक स्पन्दन गौरव की ओर ले जाने वाली उड़ान बन सकता है।

और जब शत्रु मनुष्य पर क्रुद्ध होकर टूट पड़ता है, तो वह उसके नाश के लिये जो करता है, वही उसे महान बनाता है।●

तुम्हें यह सीखना चाहिए कि श्री अरविन्द को और मुझे छोड़कर तुम्हारे कोई भाई, बहन, मां, बाप नहीं है और उन्हें चाहे जो कुछ होता रहे उसका तुम्हारे साथ कोई सम्बन्ध न होना चाहिए, तुम मुक्त अनुभव करो। हम ही तुम्हारा समस्त परिवार, तुम्हारा संरक्षण और तुम्हारे सर्वेसर्वा है।

श्री माँ

छोटी बातें – बड़ा महत्व



युगों से भारतमाता ने महान व्यक्तियों को जन्म दिया है, युद्ध-भूमि और आध्यात्मिक क्षेत्रों के वीरों को, पुरोधा और योगियों को, जिन्होंने दिव्य-शक्तियों को गतिशील किया। भारतीय संस्कृति के महान रक्षकों की इस आकाशगंगा के एक चमकते सितारे थे - सुरेन्द्रनाथ जौहर - जो 'चाचाजी' नाम से लोकप्रिय और सुपरिचित हैं।

सुरेन्द्रनाथ जौहर

एक बार आश्रम के बच्चों ने माताजी से कहा, 'माँ हमें रविवार को छुट्टी चाहिये। माताजी बोलीं, - क्यों? क्या दूसरे दिनों में तुम्हें छुट्टी नहीं होती?'

-छोटी सी बात है...

किन्तु यदि उस पर हम गहराई से सोचें, तो सोचते ही चले जायेंगे। शायद माताजी कहना चाहतीं हों कि दुनिया का काम कभी बन्द थोड़े ही होता है। सूर्य छुट्टी नहीं लेता, नदियाँ छुट्टी नहीं लेतीं; किन्तु हम छुट्टी चाहते हैं, - क्यों? हम हाँकी खेल रहे हैं; एक घण्टे से ज्यादा नहीं खेल सकते, थक जाते हैं। पढ़ रहे हैं, दो - चार घण्टे से अधिक नहीं पढ़ सकते, 'बोर' हो जाते हैं। आखिर क्यों, क्या कभी तुमने सोचा है? यह थकान और बोरियत हममें आती कहाँ से है? यह होता इसलिए है कि हम 'आनन्द से कटे हुए होते हैं।' 'हॉलीडे' चाहते हैं; इसका मतलब हुआ केवल वही हमारे लिये आनन्द का दिन है। बाकी छः दिन आनन्द के दिन नहीं। किन्तु जब हम भगवान् के साथ जुड़े हुए होते हैं, उनमें ही रहते हैं, तो हमारे लिए हर दिन छुट्टी का और आनन्द का दिन बन जाता है। हमारा उठना-बैठना, खाना-पीना, खेलना, पढ़ाई, काम, सभी कुछ, छुट्टी मनाने की तरह हो जाते हैं। बचपन से ही यदि इस बात की समझ आ जाये तो कितना अच्छा हो। बच्चे इस छोटी-सी बात को गहराई से सोचें तो फिर रोज उनके लिए छुट्टी ही छुट्टी है।

-और एक छोटी-सी बात याद आयी...

अभी एक अफ़सर के पास गया था। आश्रम का कुछ काम था। वहाँ एक सज़न मिले। मेरा नाम सुनते ही उछल

पड़े। बोले, 'भई वाह, क्या मुलाक़ात हुई- याद है मेरी आपको? मैंने पच्चीस साल पहले आपके स्कूल में अपना बच्चा दाखिल किया था, तब आपसे मुलाक़ात हुई थी।'

मैंने कहा, 'वाह साहब, याद क्यों नहीं? लेकिन उस दिन के बाद तो आप कभी मिले नहीं? अच्छी दोस्ती निभाई आपने?'

उनका जवाब माकूल था। बोले, अजी, 'दोस्ती दूर की, खटाई अमचूर की।' ठीक ही तो था। शायद पच्चीस साल नहीं मिले, तभी अब तक दोस्ती बनी हुई थी। मिलने में हमें बड़ा आनन्द आ रहा था। नज़दीक की दोस्ती तो आप जानते ही हैं। बार-बार की मुलाक़ात से दोस्ती का लुत्फ़ जाता रहता है, यह भी दुनिया का ढर्रा है।

केवल एक दोस्ती है दुनिया में, जो एक बार जुड़ती है, तो बार-बार यहाँ तक कि प्रतिपल मिलते रहने से भी नहीं टूटती और ना फीकी पड़ती है। वह है भगवान् से दोस्ती! भला आप एक बार उन्हें दोस्त बनाकर तो देखें।

और एक छोटी-सी बात...

जो ज़िन्दगी भर के लिए मेरे लिये मार्गदर्शक रही! पहले एक कहानी सुनिये :

अकबर के दरबार में 'नौ मिनिस्टर' थे, जो 'नवरत्न' कहलाते थे। उन सब में बीरबल सब से अधिक लोकप्रिय थे, क्योंकि वे हरदम पते की बात करते थे। एक दिन की बात है कि अकबर के दरबार में एक जुलाहा आया। तब तो कपड़े की मिलें नहीं हुआ करती थी। बादशाह को भेंट करने के लिए वह बड़े शौक़ से एक बहुत अच्छी चादर ले आया था। यह बेहतरीन नज़राना पाकर अकबर खुश हुए।

जुलाहे ने कहा, 'आलमपनाह! ज़रा खोलकर और ओढ़कर तो देखिये!'

बड़े शौक से बादशाह अकबर लेटे और चादर ओढ़ी। किन्तु यह क्या! चादर से पाँव ढँकते तो सिर खुला रह जाता, और सिर ढँकते तो पाँव बाहर निकल आते। इतनी सुन्दर चादर, और पूरी ना आये। इसका इलाज क्या है? बुलाओ मिनिस्ट्रों को! आखिर समस्याओं को हल वे ना करें तो उन्हें किसलिए पाल रखा है। एक वज़ीर आया। देखा, सोचने लगा, कुछ समझ में नहीं आया। दूसरा बुलाया गया। उसने सोचकर बतलाया, 'इस चादर में जोड़

लगा दिया जाये।' 'बिल्कुल नहीं, इतनी सुन्दर चादर में जोड़-जाड़।' बादशाह को यह बिल्कुल पसन्द नहीं हुआ। फिर, तीसरा आया, फिर चौथा, पाँचवाँ, छठा- किन्तु किसी का इलाज बादशाह को पसन्द ही नहीं आता था। सबको बेवकूफ, नालायक कहकर भगा दिया बादशाह ने। अब रह गये केवल बीरबल। पूछा, 'कहाँ है बीरबल? बुलाओ!'

बीरबल आये! बादशाह ने अपनी समस्या सामने रखी, बोले, 'बताओ, चादर पूरी कैसे पड़ेगी?'

बीरबल ने कहा, 'शहंशाह, इसमें दोष तो आप ही



श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर जी ने माँ के चरणों में समर्पण करते हुए

का है!'

'कैसे?'

'माँ की गोद में आप कैसे लेटते थे?'

'घुटनों को मोड़कर!'

'तो वैसे ही लेटिये!'

'क्यों?'

'हुजूर, जितनी आपके पास धन-दौलत है, उसी हिसाब से तो आप राज चलायेंगे! उसी प्रकार आप अपनी चादर के मुताबिक पाँव फैलाइये! आप सोते हैं, तो यह ज़रूरी थोड़े ही है कि आप टाँगें पूरी फैलाकर सोयें! उतने पैर पसारिये, जितनी चादर होये!' वाकई में यह था समस्या का कोई हल! अकबर को पसंद आ गया।

वैसे यह भी छोटी-सी बात है। जितना आपके पास है, उसके हिसाब से ही आप खर्च करें! जितनी फ़ौज आपके पास है, उसी के अनुपात में आपके पास हिम्मत

हो; जितनी बुद्धि आपके पास है, उतना ही काम आप करें। यह तो है साधारण-सी बात किन्तु इसे यदि हम अपने जीवन में उतार लें तो हमारे सवालों और हमारी जरूरतों के हल आसान हो सकते हैं।

खर्च की जब बात आती है, तो एक संस्मरण याद आता है, जो मैंने अपने पल्ले बाँध रखा है। एक बार मैं महात्मा हंसराज जी के पास गया था। बातचीत में उन्होंने अपने जीवन का एक राज बतलाया और कहा, 'जब भी तुम्हें कोई चीज़ की इच्छा हो तो पहले अपने-आपसे पूछो- क्या इस चीज़ के बग़ैर गुजारा हो सकता है?' (When you want anything, you first ask yourself — 'can I do without it')? यह बात मुझे हर वक़्त याद रहती है! क्या इस चीज़ के बग़ैर काम चल सकता है। इस प्रकार की छोटी-छोटी बातें ध्यान में रखें और गहराई से उन पर सोचते रहें- तो वे ही जीवन में बड़े काम की सिद्ध होती हैं।●

हमारे पर्वत: हमारा गौरव-1

-रूपा गुप्ता

हमारा यहां श्री अरविन्द व श्रीमां की शिक्षाओं पर आधारित 7 दिन का कैम्प था जिसमें श्री अरविन्द व श्रीमां की विचारधारा से जुड़े अनेक प्रदेशों में स्थित श्री अरविन्द सोसायटी व श्रीमां के स्वप्न नगर ऑरोविल से अनेक लोग आये हुए थे। हमारी यात्रा एक आध्यात्मिक यात्रा थी। श्री अरविन्द ने भारत की आजादी की लड़ाई पहले सक्रिय राजनीति में भाग लेकर, और बाद में आध्यात्मिक तपस्या से

निरन्तर भारत और भारतवासियों को शक्ति प्रदान करके लड़ी। श्री अरविन्द के 5 मुख्य स्वप्न थे जो उन्होंने भारत के लिये देखे थे। सभी कैम्प के सहभागियों को 5 गुप्स में बांट दिया गया था जो एक-एक स्वप्न पर विचार करने और देश व जीवन में

उसको किस प्रकार व्यवहारिक रूप प्रदान किया जाये इस पर अपनी-अपनी प्रस्तुति करने वाले थे। हमारा ग्रुप श्री अरविन्द के स्वप्न- 'भारत की विश्व को आध्यात्मिक देन' पर कार्यरत रहा। सभी गुप्स ने आखिरी दिन बड़े प्रभावशाली, संगीत और नाटकीय प्रस्तुतिकरण के साथ अपनी-अपनी परियोजना सबके सामने रखी जिनको बहुत

सराहा गया।

इसके साथ ही योग, संगीत, मड वर्क, हंसी-हंसी में रोगमुक्ति जैसी कार्यशालाएं व अन्य भी जिसके पास जो-जो कलायें थीं, सबको अपनी-अपनी कलायें बांटने का पूरा-पूरा अवसर मिला। कैम्पवासियों ने ट्रैकिंग, रिवर क्रासिंग और रैपलिंग का भी पूरा-पूरा आनन्द लिया। तारा दीदी और यहां तक कि हमारे ग्रुप की एक सदस्या जो

कॉफी लम्बी व जिनका वजन लगभग 100 किलो था, उन्होंने भी बहुत उत्साह से सफलता पूर्वक रैपलिंग में भाग लिया।

एक दिन सभी कैम्प वासियों के लिये नैना पीक जाने का आयोजन किया गया। यह चोटी शहर की सबसे ऊँची चोटी



नैनीताल में पर्वतीय स्थल

मानी जाती है। यहां ट्रैकिंग पर जाने का अलग ही मजा है। लेकिन यहां मौसम के मिज़ाज का कुछ पता नहीं होता, कभी बारिश तो कभी तेज धूप और बारिश तो अपनी मनमर्जी से कभी भी बरस सकती है इसलिये यदि भीगने का आनन्द नहीं लेना चाहते तो अच्छा होगा छाता या रेनकोट साथ लेकर चलें। नैना पीक आने जाने में

लगभग 6 से 7 घंटे का समय लग जाता है। उतरते उतरते सांझ होने लगती है इसलिये ट्रैकिंग पर जाते हुए आवश्यक है कि एक टॉर्च भी साथ ले जायें। अच्छा हो यदि वहां ग्रुप्स में ही जाया जाये, अकेले जाने में रास्ते में कुछ जंगली जानवर और लंगूरों का भय बना रहता है। फूड पैकेट्स आप साथ ले जा सकते हैं, ऊपर वहां एक छोटा सा ढाबा ही होता है जहां से आप चाय मैगी आदि ले सकते हैं।

उपसंहारः वास्तव में यात्रा एक व्यक्ति के खाली समय को भरने के साथ-साथ ज्ञान अर्जन की उसकी

बौद्धिक ललक को भी संतुष्टि प्रदान करती है। कहते हैं यात्रा करना एक महंगा शौक है लेकिन रोजमर्रा की जिंदगी की नीरसता से बाहर निकल कर यात्रा करने, नये स्थानों को देखने और जानने में जो आनन्द है वह हमारे वित्तीय भार की भरपूर भरपाई कर देता है। यह समय के सदुपयोग

का सर्वोत्तम तरीका है। रोमांचित एवं आश्चर्य चकित करने वाले स्थल उसके बाल सुलभ उत्साह को जाग्रत रखते हैं और व्यक्ति आयु के भार से ऊपर उठ कर नयी ऊर्जा प्राप्त करता है।

नैनीताल की प्रमुख चोटियों में व्यू की चोटी, नैना पीक व टिफिन टॉप हैं। व्यू की चोटी से नैनीताल की नैसर्गिक सुन्दरता के साथ-साथ, विश्व के सबसे सुंदर बर्फ से आच्छादित मनोहारी हिमालय पर्वत श्रंखलाओं का अद्भुत सौन्दर्य देखने में आता है। यहां से डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर नैना पीक है जहां से चाइना बार्डर दिखायी देता है।

वननिवासः फूलों से सजा, श्रीमां के महती स्वप्न का एक छोटा, प्यारा सा साकारिकरण है। यह नैनीताल की लैंडस एन्ड और नैना पीक के लिये जाते हुए थोड़ा ऊपर की तरफ बसा हुआ एक सुन्दर पहाड़ी स्थल है। पूर्व में

इसका नाम बैन-नैविस था। सुना है स्कॉटलैंड में एक रमणीक पर्वत है जिसका नाम बैन-नैविस है और उसी के नाम पर इसे यह नाम दिया गया था। इसे नेपाल के राणा ने, जो श्री अरविंद के भक्त थे, किसी अंग्रेज से खरीदा था। उससे यह स्थान श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर, श्रीमां के अनन्य भक्त ने खरीदा और इसका नामकरण उसी से मिलता जुलता 'वननिवास' कर दिया।

यहां समय-समय पर भारत के अनेक स्थानों से लोग आकर कैम्पस आयोजित करते हैं जो आध्यात्मिक व



कैम्प में आध्यात्मिक विचार गोष्ठी

प्रदान करता है जहां रह कर वे अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भी उत्तम बना सकें। बिजली का सारा काम यहां सोलर एनर्जी से ही होता है इसलिये गरम पानी की भी उचित व्यवस्था रहती है।

प्रारम्भ से ही श्रीमां ने एक स्थान का स्वप्न देखा था जहां आध्यात्मिकता के खोजी अपना पूरा समय आध्यात्मिक जीवन को समर्पित कर सकें। उन्हीं के शब्दों में, 'पृथ्वी को एक ऐसे स्थान की आवश्यकता है जहां साधक, सामाजिक रीतियों, अपनी खुद की बनायी विरोधाभासी नैतिकताओं, भूतकाल की गुलामी और धार्मिक लड़ाइयों से मुक्त होकर स्वयं को पूरी तरह दिव्य चेतना जो अपने आपको सम्पूर्ण से प्रगट करना चाह रही है की खोज और उसकी साधना में लगा सकें... जहाँ सद्भाव और सच्ची लगन वाले सभी मनुष्य एकमात्र प्रभुसत्ता, परमसत्ता से निर्देष्टित रह सकें'। ●

क्रमशः

नव-वर्ष के आगमन की प्रार्थना

विमला गुप्ता

हे समस्त वरदानों के परमदाता प्रभु!
तुम ही इस जीवन को सार्थकता करते हो प्रदान,
बनाते हो इसे पवित्र, शुभ एवं महान्।
तुम ही हमारी नियति के स्वामी हो,
और हमारी अभीप्सा के एकमेव लक्ष्य हो।
तुम्हें समर्पित है इस नववर्ष का प्रथम मुहूर्त।

प्रभु! कृपा करो कि इस समर्पण द्वारा
गौरवान्वित हो उठे यह सकल वर्ष,
जो लोग तुम्हारी अभीप्सा करते हैं, वे
लोग तुम्हें ढूँढ लें,
और वे सब जो दुःख झेलते हैं, नहीं
जानते उसका निराकरण
वे अनुभव कर सकें कि उनकी तमोग्रस्त
चेतना की कठोरता को
प्रतिपल तोड़ रहा है तुम्हारा प्रकाश।

हे नाथ! मैं महान् कृतज्ञता एवं असीम भक्ति-भावना
से नतमस्तक हूँ तुम्हारी कल्याणी ज्योति के समक्ष
और समस्त पृथ्वी की ओर से मैं करती हूँ
तुमसे नम्र निवेदन,
कि तुम अपने प्रेम और प्रकाश की पूर्ण बहुलता के साथ,
स्वयं को करो अधिकाधिक प्रकट एवं अभिव्यक्त।

तुम ही हमारे विचारों एवं भावनाओं के स्वामी बनो।
तुम ही सर्वस्व बनो हमारे सभी कर्मों एवं कार्यों के,
क्योंकि तुम ही हो हमारी वास्तविकता के सच्चे स्वरूप।
तुमसे रहित यह जीवन असत्य एवं असहाय है,

तुमसे रहित सब कुछ दुःखमय अन्धकार
है, भ्रमजाल है,
तुमसे ही जीवन है, उल्लास है एवं प्रकाश है,
तुममें ही परमोच्च शान्ति का वास है। ●

5 दिसम्बर (महासमाधि)

मथुरानाथ बन्दोपाध्याय, (हिन्दी रूपान्तर : ठाकुर प्रसाद)

योगिवर! समुज्ज्वल योगतनु को
किस हेतु उत्सर्ग किया? उसका मर्म जानता हूँ।
जैसे बीज मृत्तिका को अति क्षुद्र दान देकर
अपने प्राणकण को निःशब्द नीरव
अगणित फलपुष्पों से उपज देकर
अपूर्व आनन्द विश्वमानव को देता है;
वैसे, हे महाप्राण! अतिमानस की

स्वर्णक्रान्ति अपना शरीर, स्वेच्छा से,
धरती के तमःपुंज में तुमने तजा है,
प्रदीप्त भास्कर देवकीनंद को जन्म लेने के लिए,
सर्वप्रसारी अमृतस्रोत बहाने के लिए,
मृणमयी धरा को चिन्मय धाम बनाने के लिए।
महान यह आत्मोत्सर्ग मृत्यु को जीतकर
निश्चय अभीप्सित सत्ययुग लायेगा।

9 दिसम्बर (समाधि)

हे विराट! हे महान् हे महायोगिन!
पृथ्वी के तमःकन्दर में बैठ तुम यहाँ
निभृत एकान्त में दुश्चर तप कर रहे हो।
किसलिए तुम्हारी यह साधना? इस अज्ञातवास में?
मही-मूलाधार मूल में महाकुण्डलिनी शक्ति
छिपी हुयी है सुप्त संगोपन में,
वह शक्ति उद्बोधित करने के लिए तुमने स्पर्श किया है
अत्यन्त भयंकर रसातल के अंधकार को।
उसी तमः से सम्पूर्ण अकेला लड़ते
वीरवर महानागिनी की ओर दौड़ रहे हो
निद्रा में मग्न होकर क्या उद्देश्य है तुम्हारा?

महा-अग्नि बीज तुम्हारी अमोघ शक्ति
उस महासर्पिणी को ऊपर की ओर जाग्रत करे,
ताकि प्रायः निर्वासित उसकी अग्निशिखा
प्रज्वलित हो, अन्तरिक्ष को भेदकर अतिमानस की
महती महतशक्ति को दृढ़ आलिंगन करने के लिए
महावह्नि दौड़ जायें।
इस तरह होगा परिणत तुच्छ तमोघन जड़
आनन्द के चिन्मय विग्रह में,
चैतन्य भूमा की अमर प्रतिमा बनेगी
ज्योतिर्मयी क्रियाशील, साकाररूपिणी।
यही है महान उद्देश्य तुम्हारा।

श्रीमाँ के आलोक-कण

- **अर्पण (Offering)** : अपने सम्पूर्ण अस्तित्व, उससे जुड़ी समस्त सत्य या असत्य, भली या बुरी, सही या गलत गतिविधियों को रूपान्तरण के लिये प्रस्तुत कर देना ।
- **अभिजात्यता (Aristocracy)** : स्वयं को तुच्छता और क्षुद्रता के प्रति उन्मुख ना रख, प्रतिष्ठा एवं प्रभाव के प्रति सजग रखना।
- **उल्लास (Joy)** : तभी आता है, जब तुम सही दृष्टिकोण अपनाते हो।
- **उन्नति (Progress)** : इसका अर्थ है सदैव तत्पर एवं तैयार रहना। प्रत्येक क्षण जो कुछ है, उसे विस्मृत करना, भूलना और, जो कुछ पास है, उसे छोड़कर या उससे बंधे ना रहकर राह पर निरन्तर आगे बढ़ते रहना। तात्पर्य जो कुछ से व्यक्ति जुड़ा है, उससे वह अटका ना रहकर आगे और आगे बढ़ता रहे।
- **एकनिष्ठा (Faithfulness)** : भगवान् द्वारा दर्शित एवं प्रेरित सभी गतिविधियों के अलावा अन्य दूसरे क्रियाकलापों को ना तो स्वीकृति देने और ना अभिव्यक्त करने।
- **कृतज्ञता (Gratitude)** : तुम्हें अपने अन्दर के बन्द द्वार खोल देने और भागवत-कृपा को अपने अन्दर प्रवेश करने देना है, जो सुरक्षादायिनी है और अन्दर गहरे तक देख लेती है।
- **कुलीनता, उदात्तता (Nobility)** : किसी भी प्रकार के ओछेपन या निकृष्टता से सर्वथा रहित गुण है। चाहे वह ओछापन भावुकता से जुड़ा हो अथवा कर्मव्यवहार से।
- **खुलापन (Openness)** : उन्नति के लिये भागवत-कार्य एवं प्रभाव के प्रति ग्रहणशील बने रहने की दृढ़ इच्छा को कहते हैं। भागवत-स्पर्श एवं चेतना के प्रति सदैव अभीप्सा बनाये रखना इसका गुण है और यह दृढ़ विश्वास रखना कि वह उच्च शक्ति और चेतना निरन्तर तुम्हारे साथ है, तुम्हारे चारों ओर है, उसमें बाधक नहीं बनना ।
- **ग्रहणशीलता (Receptivity)** : दिव्य क्रियाओं को स्वीकारने एवं बनाये रखने की क्षमता को कहते हैं।
- **दृढ़ता (perseverance)** : वह निर्णायक भाव जो लक्ष्य तक पहुँचने में सतत जुटा रहे।
- **दूरदर्शिता, विवेक (Prudence)** : घटनाओं के परिणाम का पूर्वानुमान लगाने में सहायक है।
- **धैर्य (Patience)** : संसिद्धि होने तक अनवरत प्रतीक्षा करने की क्षमता को कहते हैं।
- **निश्चलता (Quietness)** : किसी भी बात से विक्षुब्ध हुए बिना कार्य करना तथा किसी भी अवस्था से अशान्त ना होकर हर बात का अवलोकन करना है।
- **नीरवता (Silence)** : सत्ता की वह अवस्था है, जब वह भगवान् की वाणी सुनती है।
- **प्रशान्ति (Calm)** : वह आत्म अधिकृत शक्ति, जो निःशब्द एवं सचेतन ऊर्जा है तथा आवेग, आवेश एवं अनभिज्ञ प्रतिक्रियाओं पर नियन्त्रण है
- **परिशुद्धि (Refinement)** : शनैः शनैः सत्ता से जड़त्व का तिरोहित हो जाना है।
- **पूर्णत्व (Perfection)** : अधिकतम अथवा उच्चतम को नहीं कहते, अपितु यह एक समत्व है, सन्तुलन है और सामंजस्य है ।
- **बहादुरी (Heroism)** : सभी परिस्थितियों में सत्य के लिए निरन्तर जुटे रहने, विरोधी के प्रति उसकी घोषणा करने और जब आवश्यक हो उसके लिये संघर्ष करने को कहते हैं साथ ही अपनी उच्चतम चेतना से कार्य करते रहने को कहते हैं।

हमारे प्रश्न और श्रीमां के उत्तर

माताजी "योग के तत्व" पढ़ना आरंभ करती हैं-

मां- तुमने कुछ प्रश्न पूछे हैं। अब तुम उन प्रश्नों पर और प्रश्न करोगे! हां तो फिर?

मां, यहां लिखा है, "हमारे योग का उद्देश्य है भौतिक चेतना में अतिमानसिक स्तर पर भगवान् के साथ जुड़ना"। जब भौतिक चेतना भगवान् के साथ जुड़ जाती है तो क्या उसके बाद रूपांतरण होता है?

मां- हां उसके बाद, पर एकदम नहीं। उसमें समय लगता है। रूपांतरण तभी होता है जब भगवान् भौतिक चेतना में अवतरित हो जायें, बल्कि यों कहना चाहिये, जब भौतिक चेतना भगवान् के प्रति पूर्णतया ग्रहणशील हो जाये- तब स्वभावतया रूपांतरण आरंभ हो जाता है। लेकिन रूपांतरण जादू की छड़ी हिलाने से नहीं हो जाता। इसमें समय लगता है और यह क्रमिक रूप से होता है।

किन्तु जब एक बार भौतिक चेतना भगवान् के साथ सम्बद्ध हो जाती है तब तो यह निश्चित रूप से हो जाता है ना?

मां- यह मैं तुम्हें थोड़ी देर बाद बता दूंगी।

क्योंकि, यदि रूपांतरण पीछे ना आये तो यह क्या अन्तिम लक्ष्य नहीं है?

मां- ना, यह वह नहीं है जिसे हम अंतिम लक्ष्य कहते हैं। किन्तु इसके बाद रूपांतरण को आना ही चाहिये, स्वभावतया आना चाहिये। किन्तु मेरा अभिप्राय यहां पूर्णता की मात्रा से है, अर्थात्, उस समग्रता से जो सुनिश्चित नहीं है, इस अर्थ में कि इस रूपांतरण में संभवतः कोई अवस्थाएं आती हैं। हम बहुत ही स्पष्ट रूप में रूपांतरण के विषय में इस ढंग से बात करते हैं 'यह हमें एक ऐसी वस्तु का आभास देता है जो जब आयेगी तो सब कुछ ठीक कर देगी—मेरे विचार में लोग लगभग ऐसा ही सोचते हैं। "अगर हमारे सामने कठिनाइयां हैं तो कठिनाइयां दूर हो जायेंगी, रोगियों के रोग दूर हो जायेंगे। और यदि शारीरिक दोष हैं तो वे भी दूर हो जायेंगे," इत्यादि इत्यादि। किन्तु यह एक धुंधला-सा विचार है, एक आभास मात्र।

एक बात बड़ी विलक्षण है। भौतिक चेतना, अर्थात्, शरीर की चेतना किसी भी वस्तु को यथार्थ रूप में उसकी समस्त बारीकियों सहित तबतक नहीं जान सकती जबतक कि वह बस चरितार्थ होने की तैयारी में ना हो। और यह इस बात का एक निश्चित संकेत होगा कि अब व्यक्ति इस प्रक्रिया को समझ सकेगा : क्रियाओं और प्रक्रियाओं के किस अनुक्रम से पूर्ण रूपांतरण साधित होगा? अर्थात्, किस क्रम से, किस विधि से? पहले क्या होगा? बाद में क्या होगा? —यह सब छोटी-छोटी बातें। ऐसे प्रत्येक समय जब तुम एक छोटी-सी बारीकी को यथार्थ रूप में देख लोगे तो इसका अर्थ यह होगा कि वह चरितार्थ होने वाली है।

व्यक्ति समग्र की झलक पा सकता है। उदाहरणार्थ, यह बिल्कुल निश्चित है कि शारिरिक चेतना का रूपांतरण सबसे पहले होगा, इसके बाद आयेगा शरीर का सभी क्रियाओं पर स्वामित्व एवं नियंत्रण और पीछे यह स्वामित्व अथवा नियंत्रण धीरे-धीरे (यहां यह अधिक अस्पष्ट हो जाता है), हां, धीरे-धीरे यह स्वयं क्रिया के रूपांतरण का रूप धारण कर लेगा- यह सब निश्चित है। किन्तु अन्त में क्या होगा इसके विषय में श्री अरविन्द ने अपने एक अंतिम लेख में लिखा है- इसमें वे कहते हैं कि इन्द्रियों का भी रूपांतरण हो जायेगा, दूसरे शब्दों में, इनका स्थान कुछ एकाग्र शक्तियों के केन्द्र (शक्तियों के केन्द्र और कर्म-केन्द्र) ले लेंगे, ये शक्तियां विभिन्न प्रकार की और विभिन्न गुणों वाली होंगी और शरीर की समस्त इन्द्रियों का स्थान ले लेंगी। पर, मेरे बच्चों, यह सब बहुत दूर की बात है, दूसरे शब्दों में, यह कार्य कैसे साधित होगा, इसका अभी तक किसी को पता नहीं लग सका है। उदाहरणार्थ, हृदय को ही लो जिसका कार्य समूचे शरीर में रक्त प्रवाहित करना है, इसका स्थान शक्तियों का कौन-सा समूह लेगा? किस प्रकार कुछ शक्तियों का केन्द्र रक्त का स्थान लेगा? ऐसी अन्य सब बातें। फेफड़ों का स्थान कौन-सी शक्तियां लेंगी और किन स्पन्दनों के साथ और किस प्रकार?... यह सब बहुत बाद में आयेगा। अभी यह कार्य चरितार्थ

नहीं हो सकता। इसकी एक झलक मिल सकती है, कुछ पूर्वाभास मिल सकता है, किन्तु... शरीर के लिये कुछ जानने का अर्थ है उसे करने की शक्ति प्राप्त करना। मैं तुम्हें एक जाना-पहचाना उदाहरण देती हूँ- तुम व्यायाम की क्रिया को तबतक नहीं जान सकते जबतक उसे कर ना लो। तुम देखोगे कि जब तुम उसे भली-भाति कर लेते हो तभी उसे जान और समझ सकते हो, इससे पहले नहीं। किसी वस्तु को भौतिक रूप से जान लेने का अर्थ है कि तुममें उसे करने की शक्ति है। हां तो, यह बात सभी वस्तुओं पर लागू होती है, रूपांतरण पर भी।

यह कार्य कैसे होगा इस विषय पर हम ज्ञानपूर्वक कुछ वर्षों के बीतने पर ही कह सकेंगे। किन्तु अभी मैं तुम्हें इतना ही बता सकती हूँ कि यह आरम्भ हो गया है।

मां, बाद का मतलब कब? आप हमें कब बतायेंगी?

मां- कब बताऊंगी? पता नहीं, मेरे बच्चों।

मैं साधना में सक्रियता और निष्क्रियता के वास्तविक अर्थ ("योग के तत्व") को भली-भाति नहीं समझ सका।

मां- क्या तुम्हें मालूम नहीं कि सक्रियता और निष्क्रियता का क्या अर्थ है? क्या तुम इन दो शब्दों का अर्थ जानते हो?

हां।

मां- हां, तो जब तुम सक्रिय होते हो तो इसका क्या अर्थ हुआ?

जब कि मैं काम कर रहा होता हूँ।

मां- काम? ठीक! और तुम निष्क्रिय कब होते हो? जब तुम सोते हो? (सब हंसते हैं)

जब मुझे आलस्य आ घेरता है मैं कुछ नहीं कर सकता।

मां- ना, मेरे बच्चे, यह आवश्यक नहीं है। निष्क्रियता आलस्य नहीं है। एक सक्रिय कर्म वह है जिसमें तुम अपनी शक्ति को बाहर की ओर प्रक्षिप्त करते हो, अर्थात्, जब कोई वस्तु तुम्हारे अन्दर से बाहर की ओर आती है- एक क्रिया, एक विचार, एक भावना के रूप में- एक ऐसी वस्तु जो तुम्हारे अन्दर से दूसरों की ओर या संसार में जाती है। निष्क्रियता की अवस्था वह होती है जब तुम अपने में ही सिमटे होते हो, अर्थात्, जो कुछ बाहर से आता है उसके प्रति खुले होते हो, उसे ग्रहण करते हो। इससे तनिक भी अंतर नहीं पड़ता कि उस समय तुम हिल-डुल रहे हो या निश्चल बैठे हो। वह ऐसी बात बिल्कुल नहीं है। सक्रिय होने का अर्थ है अपने अन्दर से बाहर की ओर चेतना, शक्ति या किसी क्रिया को प्रक्षिप्त करना। निष्क्रिय रहने का अर्थ है

निश्चल रहकर बाहर से आयी वस्तु को ग्रहण करना। यही बात वहां कही गयी है- मुझे पता नहीं वहां क्या लिखा है (माताजी पुस्तक के पन्ने उलटती हैं)... यह बहुत स्पष्ट है, "अभीप्सा में सक्रियता", उसका अर्थ यह है कि तुम्हारी अभीप्सा तुम्हारे भीतर से निकलकर भगवान् की ओर ऊपर उठती है (तपस्या में या जिस अभ्यास को तुमने अपनाया है उसमें) और जो शक्तियां तुम्हारे साधना के विरोधी हैं उन्हें तुम अस्वीकार कर देते हो। यही सक्रियता की क्रिया है।

अब यदि तुम सच्ची प्रेरणा, आन्तरिक पथप्रदर्शन या पथप्रदर्शक चाहते हो, यदि तुम ऐसी शक्ति प्राप्त करना चाहते हो जो तुम्हें मार्ग दिखा सके तथा तुम्हें ठीक ढंग से कार्य करने में सहायता पहुंचा सके तो तुम हिलते-डुलते नहीं (मेरा मतलब शरीर के हिलते-डुलते से नहीं है), उस समय तुममें से कोई भी वस्तु बाहर की ओर प्रक्षिप्त नहीं होनी चाहिये, प्रत्युत तुम्हें नितान्त निश्चल परन्तु खुले हुए भाव में बैठे रहना चाहिये, और शक्ति की प्रतीक्षा करना चाहिये, तुम्हें अपने-आपको इतना उन्मुक्त रखना चाहिये कि जो कुछ आए उस सबको तुम पूर्ण रूप से ग्रहण कर सको। यह क्रिया ऐसी होती है : बाहर की ओर प्रक्षिप्त होनेवाले स्पन्दनों के स्थान पर वहां ऐसी शान्त स्थिरता विराज जाती है जो पूर्णतया खुली होती है, मानों तुम इस प्रकार अपने सारे रन्ध्रों को उस शक्ति के प्रति खोल रहे हों, जिसे तुम्हारे अन्दर अवतरित होकर तुम्हारे कर्म और तुम्हारी चेतना को रूपान्तरित करना है।

ग्रहणशीलता सुन्दर निष्क्रियता का फल होता है।

किन्तु, मां, निष्क्रिय होने के लिये प्रयत्न करना होता है।

मां- यह आवश्यक नहीं, यह लोगों पर निर्भर है। प्रयत्न? हां, व्यक्ति को उसके लिये संकल्प करना ही होगा। किन्तु क्या संकल्प प्रयत्न है? स्वभावतया ही, उसे उसके सम्बन्ध में सोचना होगा। उसे पाने की इच्छा करनी होगी। किन्तु दोनों बातें साथ-साथ चल सकती हैं। चल सकती हैं ना? एक ऐसा क्षण भी होता है जब दोनों, अभीप्सा और निष्क्रियता- बारी-बारी ही नहीं साथ-साथ भी चल सकती हैं। तुम एक ही साथ अभीप्सा और इच्छा करने की स्थिति में हो सकते हो। जिसके फलस्वरूप कोई वस्तु नीचे उतरती है। एक ओर अपने-आपको खोलने और ग्रहण करने का वह संकल्प और दूसरी ओर वह अभीप्सा जो उस शक्ति को नीचे बुलाती है, जिसे तुम ग्रहण करना चाहते हो—साथ ही, उस समय तुम पूर्ण आन्तरिक

निश्चलता की उस अवस्था में होते हो जो तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होने की अनुमति देती है। क्योंकि ऐसी निश्चलता में ही यह कार्य संपन्न हो सकता है तथा व्यक्ति शक्ति के प्रति ग्रहणशील हो सकता है। यह दोनों एक-दूसरे के कार्य में विघ्न डाले बिना साथ-साथ चल सकती है, अथवा बारी-बारी से आने पर भी यह एक दूसरे से इतनी जुड़ी होती है कि इनमें भेद ही ना किया जा सके। किन्तु व्यक्ति इस अवस्था में हो सकता है कि उसकी अभीप्सा अग्नि की एक बृहत् शिखा के रूप में ऊपर उठकर एक विशाल पात्र का रूप धारण कर ले जो अपने-आपको खोलकर ऊपर से आने वाली वस्तु को ग्रहण करे।

हां, दोनों साथ-साथ चल सकती हैं। जब व्यक्ति को इस कार्य में सफलता मिल जाती है, तो वह जो भी करता हो दोनों को सतत् रूप में साथ रख सकता है। केवल वहां चेतना का जरा-सा, बहुत ही जरा-सा स्थानान्तरण हो जाता है। उसकी दृष्टि में लौ (शिखा) पहले आती है फिर ग्रहण करने वाला पात्र- वह जो अपने-आपको भरना चाहता है और वह 'लौ' जो ऊपर उठकर उस वस्तु का आह्वान करती है जिसे पात्र को भरना है। यह हल्की-सी लोलक क्रिया की तरह होती है और ऐसा आभास होता है कि दोनों एक ही समय हो रही हैं।

(मौन)

यह उन चीजों में से एक है जिन्हें धीरे-धीरे शरीर के रूपान्तर के लिये तैयार होने के साथ-साथ पहचाना जाता है।

शरीर जितना रूपान्तरण के लिये तैयार हो जाता है उतना ही व्यक्ति इसे अपने अन्दर देख लेता है। शरीर एक आश्चर्यजनक यंत्र है, इस अर्थ में कि यह दो विरोधी वस्तुओं को एक साथ अनुभव कर सकता है। शारिरिक चेतना की एक ऐसी अवस्था होती है जो उन वस्तुओं को पास लाती है और समग्र रूप देती है- जो अन्य चेतनाओं में बारी-बारी से घटती है बल्कि किन्हीं में एक-दूसरे का विरोध भी करती है। किन्तु जब व्यक्ति वहां, मन तथा प्राण के उच्च स्तर तक पहुंच जाता है और विरोधी वस्तुओं में सामंजस्य स्थापित करने योग्य विकास साधित कर लेता है (ऐसा करना अनिवार्य है), जब व्यक्ति इस कार्य में सफलता प्राप्त कर लेता है, तब ऐसे क्षण आते हैं जब कि वस्तुएं बारी-बारी घटती हैं, एक के बाद दूसरी आती है। जब कि शरीर की चेतना में एक विलक्षण बात यह है कि यह सभी वस्तुओं को एक साथ अनुभव कर सकती है (क्या इसे अनुभव करना कहें? बल्कि "सचेतन होना"

शब्द इसे भली प्रकार अभिव्यक्त करता है), मानो तुम एक साथ ही गर्मी और सर्दी अनुभव कर रहे हो, मानो तुम एक साथ सक्रिय और निष्क्रिय हो, सभी कुछ तब ऐसा ही अनुभव होने लगता है। तभी तुम अपने कोषाणुओं में क्रियाओं की समग्रता को पहचानने लगते हो। यह वस्तु-सत्ता के और भागों की अपेक्षा शरीर में अधिक ठोस- जो कि स्वाभाविक भी है—और पूर्ण है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि ऐसा ही होता रहा तो यह प्रमाणित हो जायेगा कि यह भौतिक स्थूल यंत्र सबसे अधिक पूर्ण है। इसलिये इसका रूपांतरण करना, इसमें पूर्णता लाना सबसे अधिक कठिन है। किन्तु यह पूर्णता प्राप्त करने में सक्षम भी अधिक है, है ना?

अतएव, मेरे बच्चों, यदि हम इस प्रकार चलते रहें तो तीन या चार पाठों में हम इस पुस्तक को समाप्त कर सकेंगे। इसके बाद हम क्या लेंगे यह हमें पहले से सोच लेना चाहिये...।

"मा" पुस्तक, स्नेहमयी मां !

मां- आह! तुम "मा" पुस्तक लेना चाहते हो? ठीक, हम यही पढ़ेंगे। तो यह निश्चित हो गया। शुभरात्रि।

मां, "तीव्र प्रतिरोध" का क्या अर्थ है?

मां- तीव्र? "तीव्र" शब्द अलंकार के रूप में प्रयुक्त हुआ है। "तीव्र", अर्थात्, तीक्ष्ण, नोकीला, क्या इसका अर्थ तुम नहीं जानते?- और शायद इसका अर्थ एक ऐसा आक्रामक, तीक्ष्ण प्रतिरोध है जो तीखे नख की भांति अन्दर तक धंस जाता है।

में इस प्रश्न का उत्तर भली-भांति नहीं समझा: "क्या अभीप्सा की शक्ति साधकों में उनकी प्रकृति के अनुसार बदलती रहती है"?

मां- ओह! हां।

मेरे विचार में प्रश्न ठीक तरह नहीं किया गया है। जिसने वह प्रश्न पूछा था वह शायद "अभीप्सा प्रभाव" कहना चाहता था पर उसने कह दिया "शक्ति"। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक में, वह चाहे जो भी हो, अभीप्सा की शक्ति एक ही जैसी होती है, किन्तु इसका प्रभाव भिन्न होता है! कारण, अभीप्सा अभीप्सा ही है: यदि तुममें अभीप्सा है तो उसमें शक्ति भी होगी। फिर यह अभीप्सा एक प्रत्युत्तर मांगती है और यह प्रत्युत्तर, अर्थात्, प्रभाव जो कि अभीप्सा का परिणाम होता है, प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर करता है। व्यक्ति में तीव्र अभीप्सा हो सकती है, पर हो सकता है कि उसकी ग्रहणशक्ति अत्यन्त दुर्बल हो। मैं ऐसे कई लोगों को जानती हूं, वे कहते हैं: "ओह! मैं सब

समय अभीप्सा करता रहता हूँ, पर मुझे प्राप्त कुछ भी नहीं होता।" यह असंभव है कि उन्हें कुछ प्राप्त ना हो, प्रत्युत्तर तो आता है, किन्तु वह स्वयं उसे ग्रहण नहीं करते। प्रत्युत्तर आता है पर वे ग्रहणशील नहीं होते। इसलिये उन्हें कुछ प्राप्ति नहीं होती।

कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनके अन्दर बहुत अभीप्सा होती है। वे शक्ति का आह्वान करते हैं। शक्ति उनके पास आती है- बल्कि उनके अन्दर प्रविष्ट हो जाती है- और वे इतने अचेतन होते हैं कि उसके विषय में कुछ भी नहीं जान पाते! ऐसा प्रायः ही होता है। उनकी अचेतन अवस्था उन्हें इस शक्ति का अनुभव ही नहीं करने देती जो उनके भीतर प्रविष्ट हो चुकी हैं। पर वह अन्दर जाकर अपना कार्य करती है। मैं कई ऐसे लोगों को जानती थी जो धीरे-धीरे रूपान्तरित भी हो गये पर वे अचेतन इतने थे कि उन्हें पता ही नहीं चला उनमें चेतना काफी बाद में आती है। कुछ अन्य लोग अधिक निश्चल, दूसरे शब्दों में, अधिक खुले, अधिक सतर्क होते हैं, उनके अन्दर जरा-सी भी शक्ति का प्रवेश हो तो वे उसे तत्काल जान जाते हैं और उसका पूरा उपयोग करते हैं।

जब तुम्हारे अन्दर कोई अभीप्सा हो, एक बहुत सक्रिय अभीप्सा, तो वह अपना कार्य करेगी ही। जिस प्रत्युत्तर के लिये तुम अभीप्सा कर रहे हो उसे वह लायेगी ही। किन्तु यदि बाद में तुम किसी अन्य वस्तु के विषय में सोचने लगे, या सतर्क ना रहो तुम्हें यह पता भी नहीं चलेगा कि तुम्हें अपनी अभीप्सा का प्रत्युत्तर मिल चुका है। ऐसा प्रायः ही होता है। लोग तुमसे कहते हैं: "मैं अभीप्सा करता हूँ, पर मुझे कुछ भी नहीं प्राप्त होता, कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता।" वस्तुतः तुम्हें प्रत्युत्तर तो मिलता है, पर उसका भान नहीं होता, क्योंकि तुम चक्की की तरह प्रत्येक समय व्यस्त या क्रियाशील रहते हो।

मां, क्या पुरुष प्रकृति के समान भूले नहीं करता?

क्रमशः

दिव्य कर्ता

इस पार्थिव जीवन में, माटी के घर में दिव्यता को प्रतिष्ठित करने का कार्य बहुत कठिन होता है। इस स्वप्न की ओर भारत ने ही कभी पहल करने का प्रयत्न तो किया था और, गिर कर हो या उठकर, उधर जीवन भर बढ़ने का भी प्रयास किया है, पर वाञ्छित तपस्या के अभाव में वह पूर्णतः सफल नहीं हुआ है। अतः भारत को पुनः इस सिद्धि का केन्द्र बनाया गया है। श्री माँ ने पृथ्वी पर पूर्णता के ध्येय का, अतिमानसिक शक्ति को जीने के संकल्प का केवल स्वप्न ही नहीं देखा है और केवल योजना या परियोजना ही नहीं बनाई।

मां- यह दृष्टिकोण निर्भर करता है...मैं नहीं जानती।
मां, यदि किसी की प्रकृति का कोई एक भाग नहीं खुलता तो उसे खोलने के लिये अभीप्सा करने की क्या विधि है?

मां- तुम यह अभीप्सा कर सकते हो कि यह भाग खुले, जो भाग खुला है वह दूसरे के लिये अभीप्सा करे। कुछ समय बाद वह खुल जायेगा- व्यक्ति को अभीप्सा करते रहना चाहिये। केवल ऐसा ही करते रहना होगा। कोई ऐसी वस्तु है जो खुलना नहीं चाहती, कोई तीव्र प्रतिरोध है जो ऐसा नहीं चाहता, वह एक हठीले बच्चे की भाँति कहती हैं: "मैं नहीं चाहती, मैं वही बनी रहना चाहती हूँ जो मैं हूँ, मैं यहाँ से नहीं हिलूंगी"... वह यह नहीं कहती कि, "मैं अपने - आपसे तुष्ट हूँ," क्योंकि वह ऐसा कहने की हिम्मत नहीं करती। किन्तु सत्य यह कि वह अपने - आपमें बिल्कुल सन्तुष्ट है, इसलिये अपने स्थान से नहीं हिलती।

किन्तु जब व्यक्ति अभीप्सा करना चाहे तो क्या उसे यह ना जानना चाहिये कि उसका कौन - सा भाग अभीप्सा कर रहा है?

मां- ओह! हां, यदि व्यक्ति सच्चा है तो वह उस भाग को जान लेगा। अगर वह अपनी ओर सच्चाई से देखे तो वह निश्चय ही जान लेगा। पर यदि वह शूतुरमुर्ग की भाँति आंखे मींच लेगा तो कुछ नहीं जान पायेगा: वह अपनी आंखे बन्द कर लेगा, सिर दूसरी ओर मोड़ लेगा, उस ओर देखेगा ही नहीं और कहेगा: "यहाँ ऐसा कोई भाग नहीं है।" किन्तु यदि व्यक्ति सच्चाई से अपनी ओर देखे तो उसे भली-भाँति पता चल जायेगा कि वह भाग कहाँ है- वह कहीं एक कोने में दुबका पड़ा है। और तब तुम जाकर उस पर सीधा प्रकाश फेंको सीधा उसी पर, तो उसे कष्ट होता है, होता है ना!●

जीवन का सच्चा लक्ष्य

श्रीमां और श्री अरविन्द के शब्दों में

प्रश्न- क्या जीवन का लक्ष्य सुखी होना है?

उत्तर- यह तो चीजों को उल्टे-पुल्टे ढंग से रखना हुआ।

मानव जीवन का लक्ष्य है भगवान को खोजना और उन्हें अभिव्यक्त करना। स्वभावतः यह खोज हमें सुख प्रदान करती है परन्तु यह सुख अपने आप में लक्ष्य ना होकर एक परिणाम है और स एक परिणाम मात्र को जीवन का लक्ष्य मान बैठने की भूल ही अधिकतर उन विपदाओं का कारण है जिन्होंने मानव जीवन को ग्रसित कर रखा है।

सुख जीवन का उद्देश्य नहीं है।

साधारण जीवन का लक्ष्य है अपना कर्तव्य सम्पादन और आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य है भगवान को पाना।

"हम सुखी होने के लिये धरती पर नहीं हैं क्योंकि पार्थिव जीवन की वर्तमान दशा में सुख असम्भव है। हम धरती पर भगवान को खोजने और प्राप्त करने के लिये हैं क्योंकि केवल 'दिव्य चेतना' ही सच्चा सुख दे सकती है।"

जगत में, जैसा कि वह है, जीवन का लक्ष्य व्यक्तिगत सुख पाना नहीं अपितु व्यक्ति को उत्तरोत्तर सत्य चेतना के प्रति जाग्रत करना है।

जीवन का सच्चा लक्ष्य है अपने अन्दर की गहराइयों में भगवान की उपस्थिति को पाना और उसके प्रति समर्पण करना ताकि वो जीवन का सभी भावनाओं और शरीर की क्रियाओं का मार्गदर्शन करने लग जायें। यह चीज जीवन को एक सच्चा और प्रकाशमय लक्ष्य प्रदान करती है।

"जीवन का एक प्रयोजन है।

वह प्रयोजन है भगवान को खोजना और उनकी सेवा करना।

भगवान दूर नहीं हैं, वे हमारे अन्दर हैं, अन्दर की गहराइयों में, भावनाओं और विचारों के उम्र। भगवान के साथ है शान्ति, निश्चयता और साथ ही सभी कठिनाइयों का समाधान।

अपनी समस्यायें भगवान को सौंप दो और वे तुम्हें सभी कठिनाइयों से बाहर निकाल ले जायेंगे।"

हम अपनी निजी मुक्ति नहीं अपितु भगवान के प्रति अपनी सत्ता का पूर्ण समर्पण चाहते हैं।

"मनुष्य भगवान को व्यक्त करने के लिये बनाया गया था। इसलिये उसका कर्तव्य है कि भगवान के बारे में सचेतन हो और अपने आपको पूरी तरह 'उनकी इच्छा' के प्रति अर्पित कर दे। बाकी सब, चाहे कैसा भी दिखता हो, मिथ्यात्व और अज्ञान है।"

"जीवन का सच्चा उद्देश्य:

भगवान के लिये जीना, या 'सत्य' के लिये जीना, या कम से कम अपनी अन्तरात्मा के लिये जीना।

और सच्ची सत्यनिष्ठा-

'भगवान' के लिये जीना, उनसे बदले में किसी लाभ की अपेक्षा के बिना।

भगवान पर एकाग्रता ही वास्तव में एकमात्र सही चीज है। वही करना जो भगवान हमसे करवाना चाहते हैं।

"हम पृथ्वी पर भगवद् इच्छा को चरितार्थ करने के लिये हैं।"

"सभी शब्दों से परे, सब विचारों से उम्र, अभीप्सा करती हुई श्रद्धा की प्रकाशमान नीरवता में अपने आपको हर तरह से, निःशेष रूप में, पूर्ण रूप से समस्त सृष्टि के परम् प्रभु को अर्पित कर दो और वे तुम्हें वही बना देंगे जो वे चाहते हैं कि तुम बनो।"●

उत्तर जीवन

सुखवीर आर्य

सृष्टि में उत्पन्न प्रत्येक मनुष्य को सर्वप्रथम यह खोज करनी चाहिये कि संसार में उसके आने का क्या प्रयोजन है! आत्मा पृथ्वी पर क्यों आती है! मनुष्य सुख-दुख से ऊपर उठ कर परम आनन्द को अपनी सत्ता का अंग कैसे बना सकता है, कैसे उसमें स्थायी निवास करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन कर सकता है!

यह सत्य है कि परमेश्वर की दृष्टि में — जिन्हें हम भक्तिभाव के वशीभूत होकर, आत्मा के प्रेम में डूब कर जगत पिता कहते हैं — उनकी वात्सल्यमयी दृष्टि में प्रत्येक संतान का स्थान समान है, उनका प्रेम प्रत्येक संतान के लिए समान रूप से सुलभ है, उनकी कृपा वृष्टि प्रत्येक संतान के लिए समान रूप से हो रही है। फिर भी यह कहा जाता है कि परमेश्वर की प्रत्येक संतान विशेष है और वे प्रत्येक संतान को एक विशेष भाव के साथ निहारते हैं, उस पर अपनी मंगलमयी दृष्टि डालते हैं, कृपा का वर्षण करते हैं। उसके आत्म-विकास को ध्यान में रखते हुए, उसके लिए जो भी आवश्यक हो, छोटी से छोटी वस्तु भी व्यवस्थित करते हैं।

हमें सब समय यह स्मरण करनी चाहिए कि एक विशेष सहायता, एक दिव्य रक्षक हमारे साथ है। हमारी जीवन-यात्रा किसी के दिव्य साये में चल रही है। एक मंगल कामनाओं से भरी, कल्याणकारी दृष्टि में पृथ्वी पर जीवन चल रहा है। मातृ स्नेह से भरपूर हृदय लिये एक देदीप्यमान दिव्य सूर्य के समान सर्वव्यापक भागवत उपस्थिति से हम घिरे हैं जो हमें सब समय सुखी, उन्नत

होते हुए देखना चाहती है और इसके लिये बदले में कभी कुछ नहीं चाहती।

प्रथम हमें गहन चिन्तन में डूबने का अभ्यासी बनना होगा। ऊपरी तल पर निवास करने वाले मन के लिए — जो कि गहराई में पैठने का अभ्यासी नहीं है और स्वभाव से चंचल है- कुछ भी सार्थक अथवा महत्वपूर्ण तथ्यों का संग्रह करना अथवा दिव्य प्रेरणायें ग्रहण करना संभव नहीं होता। कारण, पदार्थों का सत्य उनके भीतर, सतही स्वरूप के परे, दूर गहराई में है। अपने समझने के लिये हम कहेंगे- मणि, मुक्ता, मोती सिन्धु की सतह पर नहीं होते। कितना भी खोजें, वे वहाँ नहीं मिलेंगे। वे सदा गहराई में होते हैं और उन्हें वे ही व्यक्ति प्राप्त करते हैं जो गहराई में पैठना, भली प्रकार डुबकी लगाना जानते हैं। हम देखते हैं कि परम सत्य सतही सत्य से, आंशिक सत्य से आच्छादित है। परमार्थ तत्व सृष्टि रूपी आवरण से छिपा हुआ है। निराकार सत्ता पदार्थों के आकारों के द्वारा ढकी हुई है। सृष्टि में समस्त पदार्थों के आधार होते हुए भी सृष्टिकर्ता परमात्मा अगोचर हैं। वे स्वयं के द्वारा रचित पदार्थों में स्वयं छिप गये हैं।

किन्तु, हमें समझना है कि परमेश्वर हमारी भौतिक दृष्टि से ही छिपे हैं और मानसिक चेतना के लिए ही अज्ञात हैं। वे बाह्य सत्ता के लिए ही अदृश्य हैं। हमारी आत्मा के लिये, चैत्य पुरुष के लिए वे सदा सर्वत्र विद्यमान हैं। अगर हम आत्मा की दृष्टि से देखने के अभ्यासी हो जायें तो परम पिता परमात्मा को सब समय, प्रत्येक पदार्थ में देख सकते हैं, उनकी उपस्थिति अनुभव कर सकते हैं। सनातन सत्ता कभी हमारे इन नेत्रों से

यह सत्य है कि परमेश्वर की दृष्टि में — जिन्हें हम भक्तिभाव के वशीभूत होकर, आत्मा के प्रेम में डूब कर जगत पिता कहते हैं — उनकी वात्सल्यमयी दृष्टि में प्रत्येक संतान का स्थान समान है, उनका प्रेम प्रत्येक संतान के लिए समान रूप से सुलभ है, उनकी कृपा वृष्टि प्रत्येक संतान के लिए समान रूप से हो रही है। फिर भी यह कहा जाता है कि परमेश्वर की प्रत्येक संतान विशेष है और वे प्रत्येक संतान को एक विशेष भाव के साथ निहारते हैं, उस पर अपनी मंगलमयी दृष्टि डालते हैं, कृपा का वर्षण करते हैं। उसके आत्म-विकास को ध्यान में रखते हुए, उसके लिए जो भी आवश्यक हो, छोटी से छोटी वस्तु भी व्यवस्थित करते हैं।

दिखायी नहीं देती। उसे देखने की दृष्टि भिन्न होती है। वह दिव्य आध्यात्मिक, गहनतम गहराई से युक्त होती है, हमारी वर्तमान दृष्टि के पीछे होती है।

हम कहेंगे — मानसिक चेतना स्तर का अतिक्रमण करने के पश्चात् ही हमें वह क्षमता प्राप्त होती है जिसके द्वारा हम आध्यात्मिक चेतना-स्तर पर सचेतन होते हैं। परम आत्मा के साथ अपना तादात्म्य संभव बनाते हैं। तादात्म्य ही वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम किसी वस्तु का समग्र ज्ञान प्राप्त करते हैं।

हमारी अभीप्सा का स्वरूप होना चाहिए — प्रथम हमें भीतर जागना है। आंतरिक स्तरों पर सचेतन होना है। अपना प्रदीप जलाना है। चैत्य पुरुष को पाना, उसके पथ-प्रदर्शन में जीवन मार्गों पर अग्रसर होना है। बाह्य सत्ता से — जो कि यात्रिक है- अपने आपको प्रथक करना, अपने मूल स्वरूप के साथ तादात्म्य लाभ करना सीखना है। तभी हमारा निवास आत्म-सत्य में होगा। तत्पश्चात् हमें चाहिये कि दूसरों को जगाना, उनके प्रदीप जलाना लक्ष्य रूप में निर्धारित करें। स्वयं सन्मार्ग पर चलें। आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश संभव बनाएँ, परमेश्वर को समर्पित जीवन यापन करें और दूसरों को उसके लिए प्रेरित करें।

विश्व प्रकृति की जो शक्तियाँ आज हमें चला रही हैं- हमें यंत्र बनाकर संसार को भोग रही हैं- उनके प्रति सचेतन हो जाते हैं, उनके साथ जो हमारा तादात्म्य है, उससे हम अपने आप को पृथक कर लेते हैं। हम अपने समीप बैठते हैं। भीतर स्थित होते हैं और सब प्रकार से सुखी रहते हैं। संसार के आकर्षणों में हम भटकते नहीं। विषय-भोग हमें लुभाते नहीं। हम भीतर संतुष्ट रहते हैं। हमारी प्रसन्नता पदार्थों पर निर्भर नहीं करती।

जब हम आत्मा में जाग जाते हैं, विश्व प्रकृति की जो शक्तियाँ आज हमें चला रही हैं- हमें यंत्र बनाकर संसार को भोग रही हैं- उनके प्रति सचेतन हो जाते हैं, उनके साथ जो हमारा तादात्म्य है, उससे हम अपने आप को पृथक कर लेते हैं। हम अपने समीप बैठते हैं। भीतर स्थित होते हैं और सब प्रकार से सुखी रहते हैं। संसार के आकर्षणों में हम भटकते नहीं। विषय-भोग हमें लुभाते नहीं। हम भीतर संतुष्ट रहते हैं। हमारी प्रसन्नता पदार्थों पर निर्भर नहीं करती। हम जगत पिता को सब निवेदित करते

हुए जीवन-मार्गों पर बढ़ते हैं।

हम मानते हैं कि परमेश्वर जीवन के जीवन हैं। चेतना की चेतना हैं। फिर भी इस समय हम उनके विषय में सचेतन नहीं हैं। वे सर्वव्यापक हैं और हमें सब समय देख रहे हैं, इस तथ्य के प्रति हम अचेतन हैं। हमें चाहिए कि हम जो भी करें उन्हें दिखाकर करें। जो भी बोलें उन्हें सुनाकर बोलें। प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक विचार, प्रत्येक भाव उन्हें समर्पित करते हुए जीवन यापन करें। किन्तु, इस समय हम ऐसा नहीं कर रहे हैं। प्रत्येक पग उठाने के लिए उनकी अनुमति लेने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। प्रत्येक निर्णय स्वयं लेते हैं। सब चुनाव हमारे होते हैं। हम ऐसा मानकर जीवन-मार्गों पर नहीं चल रहे हैं कि एक दिव्य सहायक हमारे साथ हैं। वह हमारा सच्चा पिता है वह हमें प्रेम करता है। और, सब समय हमारी सहायता करने को उद्धत रहता है। अगर वास्तविकता देखी जाए तो हम कहेंगे कि हम अपने व्यवहार में ऐसे रहते हैं, मानो हमारे साथ कोई रक्षक, सहायक हमारी आत्मा का प्रेमी है ही नहीं। हम अज्ञान से बाहर आने के लिए, आत्म-सत्य में स्थित होने के लिए परमेश्वर का आह्वान नहीं करते, सहायता नहीं खोजते। हमारे भीतर से प्रार्थना नहीं उठती। यही कारण है कि हमारा जीवन अज्ञान में, अंधकार में चल रहा है। सुख दुख का मिश्रित — सा स्वाद हममें से प्रत्येक को चखना होता है। हम आनन्द से दूर हैं, जो कि हमारा मूल है, मौलिक स्वभाव है।

अगर हम चाहें अपना जीवन-स्तर ऊँचा उठा सकते हैं। आत्मा में सचेतन जीवन हमारे लिये संभव हो सकता है। आत्मा का स्वभाव हमारा स्वभाव हो सकता है। उसके लिये हमें आन्तरिक स्तर पर जागना होगा। वर्तमान जीवन स्तर पीछे छोड़ना होगा, इससे ऊपर उठना होगा। तभी हम सच्चे स्वरूप के प्रति, अपने सच्चे व्यक्तित्व के प्रति सचेतन हो सकते हैं। आत्मा के साथ तादात्म्य लाभ कर सकते हैं। आत्मा में निवास सम्भव बना सकते हैं। आत्मा की प्राप्ति, उसका साक्षात्कार करने के पश्चात् हम ठीक वही नहीं रहते जो कि इस समय हैं, हम पूर्णतः दूसरे प्रकार के व्यक्ति हो जाते हैं। अंधकार से ऊपर उठ जाते हैं। इंद्रियों की दासता से मुक्त हो जाते हैं। हमारा हृदय आवरणहीन हो जाता है। हम अनुभव करते हैं कि एक दिव्य पुरुष सब समय हमारे समीप है। हम उसकी उपस्थिति ठोस रूप में, पूर्ण जीवन अनुभव करते हैं। उसके संकल्प की चरितार्थता ही हमारे जीवन का, कर्मों का स्वरूप होता है। हम उसे समर्पित रहते हुए जीवन

यापन करते हैं। प्रत्येक अंग उसकी इच्छा से चालित होता है। हमें केवल इस तथ्य के प्रति सचेतन रहना होता है कि एक क्षण के लिये भी, अवचेतन अवस्था में भी पुराना व्यक्ति पुनः सक्रिय ना हो उठे, उसका स्वभाव ना लौट आये।

नीरवता में ही अन्तर्वाणी सुनायी देती है नीरव होकर ही हम हृदय गुहा में प्रवेश सम्भव बनाते हैं। नीरवता में ही भागवत् उपस्थिति अनुभव होती है, हृदय का चिर बन्द द्वार खुलता है हम आत्म दर्शन लाभ करते हैं। बाह्य सत्ता को परछाई की भाँति अपने सम्मुख देखते हैं। हमें चाहिये कि चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करें। अन्तर्मुखा का भाव अपनाएं। भीतर नीरवता में स्थिर होकर बाह्य घटनाओं का अवलोकन करने के अभ्यासी बनें। तभी हम यात्रिक सत्ता से अपने आपको पृथक करने में सफल हो सकेंगे। हमें पदार्थों को देखने की सम्यक दृष्टि प्राप्त होगी। हम देखेंगे- यहाँ परमेश्वर को छोड़कर अन्य किसी सत्ता का पृथक अस्तित्व नहीं है। हम अनुभव करेंगे कि सृष्टि में अस्तित्व एक है, जीवन एक है, चेतना एक है। हम सब एक दिव्य गोद में पलने वाले शिशु हैं। हमारा गन्तव्य एक है। सम्पूर्ण सृष्टि आत्मा के दिव्य एकत्व में बंधी है। आत्मा का एकत्व ही चरम सत्य है। उसमें निवास सम्भव बनाना ही यहाँ मनुष्यों का, पृथ्वी पर अवतरित आत्माओं का प्रथम कर्तव्य है।

जिस प्रकार बाह्य प्रकृति के साथ, जो कि यात्रिक है, हमारा तादात्म्य सम्भव है और हम उसमें स्वभाविक रूप से निवास करते हैं, उसी प्रकार आंतरिक प्रकृति के साथ, जगत सत्ता के साथ, सृष्टि के मूल के साथ हमारा तादात्म्य सम्भव हो सकता है। हम उसमें स्थायी निवास सम्भव बना सकते हैं। अस्तित्व के उस स्तर पर हम पूर्णतः सुक्त होते हैं अपने आपको सम्राट के रूप में देखते हैं। हमारा संकल्प दिव्य संकल्प के साथ एक रहता है जो संसार में क्रियाशील है, सृष्टि जिसकी आत्म अभिव्यक्ति है। हमें शाश्वत सत्य पर अटूट श्रद्धा होनी चाहिये कि सृष्टि में इसके पीछे एक ही संकल्प कार्य कर रहा है। सम्पूर्ण चराचर जगत उसी की अभिव्यक्ति है उससे बाहर यहाँ कुछ नहीं है। यह संकल्प अपने स्वभाव में दिव्य है इसका मूल, इसका उद्गम वही दिव्य पुरुष है शास्त्र जिसे जगत् पिता अथवा सृष्टि कर्ता परमात्मा कहते हैं किन्तु हमें अपनी वर्तमान मानसिक दृष्टि के दौरान परमात्मा की आत्म अभिव्यक्ति का रूप, यह सृष्टि अदिव्य दिखायी देती है।

पदार्थ अदिव्य नहीं हैं, उनका मुखौटा अवश्य अदिव्य है जो कि लीला के लिये आवश्यक था। अन्यथा यहाँ सब

एक दिव्य पुरुष का विस्तार है। एक दिव्य अस्तित्व के द्वारा ये भिन्न-भिन्न आवरण अपने ऊपर धारण किये गए हैं। मूल वस्तु सर्वत्र एक है वह दिव्य है। यहाँ परमेश्वर को छोड़कर अन्य कोई नहीं है। भिन्नता भ्रम है। पृथकत्व का भाव भ्रांति है। सम्पूर्ण सृष्टि मकड़े के जाले के समान है। अगर हम चाहें जाले के एक खण्ड का भी पृथक रूप से अवलोकन कर सकते हैं, उसकी भी अपनी सत्यता है। किन्तु उस स्तर पर हम समग्र दृष्टि के असीम आनंद से, अनुभव की समृद्धता से वंचित रह जाते हैं।

इस समय हमारे नेत्रों पर अज्ञान का आवरण है। अन्तःचक्षुओं पर पड़े इस आवरण के कारण ही हमें ये सब पदार्थ, जो अपने मूल में एक हैं, अपनी मूल प्रकृति में दिव्य हैं पृथक दिखायी देते हैं, अदिव्य भासते हैं। अगर हम एक सोपान और ऊपर उठें- जहाँ हमारा हृदय आवरणहीन है- तो हमारी दृष्टि और अधिक सत्यमय, और अधिक विशाल होगी। हम एक ऐसे सत्य को अनुभव करेंगे जिसकी विशालता को, ऊँचाई को, गहराई को हमारी मानसिक चेतना नहीं माप सकती, उसकी थाह नहीं पा सकती। उस स्तर पर सब एक ही सत्य अनुभव होता है। आंतरिक तथा बाह्य भासने वाला भेद मिट जाता है यहाँ सब कुछ उस 'सर्वम', 'पूर्णम' में जो सब ओर से सब प्रकार से परिपूर्ण है- डूबा हुआ, उसी की आत्मअभिव्यक्ति दिखायी देता है। एक अखण्ड अभिभाज्य अनन्त सत्ता सर्वत्र व्याप्त अनुभव होती है। जगत रूप में वही दिखायी देती है। हम अनुभव करते हैं, परम आत्मा का चरम एकत्व ही सर्वोच्च सत्य है।

उच्चतम स्तर पर आरोहण करने के पश्चात् सबका अनुभव एक होता है। सबकी दृष्टि एक होती है। सब एक ही वाणी बोलते हैं। अगर अनुभूति में भिन्नता है, इसका अर्थ होता है प्राप्त स्तर की भिन्नता। हमने उच्चतम ऊँचाई उपलब्ध नहीं की। ऊँचाई उपलब्ध की, किन्तु उच्चतम शिखर हमारी दृष्टि से ओझल रहा। हम उच्चतम शिखर पर आरोहण सम्भव नहीं बना सकें। अतः कहना होगा अनुभूति आंशिक थी, सीमित थी। हमने सीमा ही अनन्त में डुबकी नहीं लगायी जहाँ हमारे द्वारा हमारे शब्दों में वही बोलता है, जहाँ दिव्य सामंजस्य का साम्राज्य है। जहाँ विभाजन प्रवेश नहीं पा सकता और सृष्टि तथा उसके पदार्थ, सब परमार्थ तत्व के चरम एकत्व में डूबे हैं। एकत्व ही जहाँ जीवन है, प्रकृति है, जहाँ सब एकत्व की दृष्टि से ही देखा जाता है और एकत्व के विधान द्वारा ही चालित होता है।●

आश्रम की गतिविधियाँ

5 दिसम्बर- श्री अरविन्द का समाधि दिवस-पुष्पांजलि व विशेष ध्यान

10 व 11 दिसम्बर- को योग की कक्षाओं का आयोजन- योग, स्वयं को जानना, तनाव प्रबन्धन व भजन तथा रविवार का सत्संग सम्मिलित थे।

25 दिसम्बर रविवार- दिव्य प्रकाश का अवतरण, 9 बजे प्रातः स्वच्छ मन कार्यक्रम का मदर्स पूर्ण स्वास्थ्य केन्द्र में उद्घाटन जिसमें हवन, संगीत, पुष्पांजलि, खेल, बाहरी प्रकृति के रूपांतरण पर वार्ता व भजन व प्रसाद वितरण सम्मिलित हैं।

31 दिसम्बर, 2016- नववर्ष की पूर्व संध्या पर 31 दिसम्बर, दोपहर 1.00 बजे से 1 जनवरी, 2017 तक ध्यान कक्ष में सावित्री पाठ व नव वर्ष पर प्रातः 8.30 से 12.15 तक सांस्कृतिक कार्यक्रम, अभीप्सा की ज्योति, ध्यान, कैलेंडर व प्रसाद वितरण।

‘श्रीअरविन्द कर्मधारा’ समाचार-पत्र के सम्बन्ध में स्वामित्व तथा अन्य विवरणों की घोषणा

फार्म 4 (नियम 5 देखिए)

- | | |
|--|---|
| 1. प्रकाशन का स्थान | श्रीअरविन्द आश्रम- दिल्ली शाखा |
| 2. प्रकाशन अवधि | त्रैमासिक |
| 3. मुद्रक का नाम | आनन्द मोहन नरुला |
| क्या भारत के नागरिक हैं? | हाँ |
| पता | श्रीअरविन्द आश्रम, श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016 |
| 4. प्रकाशक का नाम | आनन्द मोहन नरुला |
| क्या भारत के नागरिक हैं? | हाँ |
| पता | श्रीअरविन्द आश्रम, श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016 |
| 5. सम्पादक का नाम | देवी करुणामयी |
| क्या भारत के नागरिक हैं? | हाँ |
| पता | श्रीअरविन्द आश्रम, श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016 |
| 6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों। | श्रीअरविन्द आश्रम (दिल्ली शाखा) ट्रस्ट, श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016 (भारतीय अधीनस्थ समाज कल्याण अधिनियम के अन्तर्गत भारत में पंजीकृत एक लोकोपकारी संस्था) |

मैं, आनन्द मोहन नरुला एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

दिनांक 3 जून 2016

आनन्द मोहन नरुला
प्रकाशक के हस्ताक्षर

